A Pratibha Spandan Journal

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 14, Issue 01, January-June, 2026

राग की अवधारणा एवं विकास: संगीत शास्त्रीय ग्रंथों के आलोक में

Dr. Gyan Chand

Associate Professor (Music), Government College, Dhami, Located at 16 Mile, Shimla, Himachal Pradesh.

Read the Article Online

OPEN ACCESS

Cite this Article

Published on 30 April, 2026

Chand, G. (2026). Raag Ki Avdharna Evam Vikas: Sangeet Shastriya Granthon Ke Alok Mein. Swar Sindhu, 14(1), 75-79.

सार

भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग की संकल्पना का विकास विभिन्न कालों में रचित संगीत ग्रंथों के माध्यम से हुआ है। वैदिक काल में यद्यपि "राग" शब्द का प्रयोग नहीं मिलता, फिर भी सामवेद में स्वरबद्ध मंत्रों का गायन, उदात्त-अनुदात्त-स्वरित स्वरों की व्यवस्था तथा गान-पद्धति का स्पष्ट वर्णन मिलता है। सामवेद को भारतीय संगीत का मूल माना जाता है। उस समय राग शब्द नहीं मिलता, परंतु स्वरों के प्रयोग, गायन पद्धति और भावात्मक अभिव्यक्ति के बीज यहीं मिलते हैं। यही स्वर-व्यवस्था आगे चलकर राग प्रणाली का मूल आधार बनी। सामगान ने आगे चलकर राग-प्रणाली की नींव रखी। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में भी राग शब्द का उल्लेख नहीं है, किंतु इसमें ग्राम, मूर्छना और जाति प्रणाली का विस्तृत विवेचन मिलता है। जातियों को राग की पूर्व अवस्था माना जाता है। कालांतर में रस सिद्धांत के माध्यम से संगीत को भावात्मक अभिव्यक्ति से जोड़ा गया, जिसने राग की भावप्रधान प्रकृति को दिशा प्रदान की। सातवीं शताब्दी में मतंग मुनि के बृहद्देशी ग्रंथ में पहली बार "राग" शब्द का स्पष्ट प्रयोग मिलता है। इस ग्रंथ में राग को ऐसा स्वर-संयोजन बताया गया है जो जनमानस को रंजित करता है तथा देशी संगीत की स्वतंत्र पहचान स्थापित करता है। तेरहवीं शताब्दी में शारंगदेव द्वारा रचित संगीत रत्नाकर में राग का अत्यंत वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित विवेचन मिलता है। इसके पश्चात यह विभिन्न कालखण्डों में क्रमशः परिष्कृत, संवर्धित एवं विकसित होता हुआ अपने वर्तमान स्वरूप तक पहुँचा है।

बीज शब्द : *राग, ग्रामराग, जाति, गीति, सामवेद, नाट्यशास्त्र, बृहद्देशी, संगीत रत्नाकर*

भारतीय शास्त्रीय संगीत विश्व की प्राचीनतम और सर्वाधिक विकसित संगीत परंपराओं में से एक है। इस संगीत परंपरा का केंद्रीय तत्व 'राग' है, जिसके बिना भारतीय संगीत की कल्पना अधूरी प्रतीत होती है। राग न केवल स्वर-समूह है, बल्कि एक ऐसी भावात्मक संरचना है, जो श्रोता के अंतर्मन को स्पर्श करती है। भारतीय संगीत में राग का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि भावात्मक परिष्कार और मानसिक तृप्ति प्रदान करना है। राग की संकल्पना भारतीय दर्शन, कला तथा जीवन-दृष्टि से गहन रूप से संबद्ध है। भारतीय संस्कृति में कला को साधना का माध्यम माना गया है और राग उसी साधना की संगीतमय अभिव्यक्ति है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य राग की उत्पत्ति के कारणों तथा उसके ऐतिहासिक विकासक्रम का क्रमबद्ध, विश्लेषणात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन करना है

राग की उत्पत्ति और संभावित कारक

मानवीय भावनाएँ और सौंदर्य चेतना: राग की उत्पत्ति का मूल स्रोत मानव की भावात्मक प्रकृति में निहित है। मानव ने जब ध्वनि के प्रभाव को केवल श्रव्य अनुभव से आगे बढ़कर भावात्मक अनुभूति के रूप में समझा, तब संगीत में सौंदर्य और रस का समावेश हुआ। विभिन्न स्वरों और उनके संयोजनों से उत्पन्न भावनात्मक प्रभावों ने राग की अवधारणा को जन्म दिया।

भारतीय संगीतशास्त्र में यह स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक राग का एक विशिष्ट भावात्मक स्वरूप होता है। यही भावात्मक स्वरूप राग को जीवंत बनाता है और उसे केवल तकनीकी संरचना से ऊपर उठाकर एक कलात्मक अनुभूति में परिवर्तित करता है। संगीत के क्षेत्र में राग शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। राग की उत्पत्ति जाति से मानी जाती है। जाति गायन का विस्तृत उल्लेख भरतकृत नाट्यशास्त्र में मिलता है। नाट्यशास्त्र को संगीत का प्राचीनतम एवं प्रमाणिक ग्रंथ माना जाता है, जिसमें संगीत की तीनों विधाओं—गायन, वादन एवं नृत्य—का वर्णन मिलता है। भरत के नाट्यशास्त्र में जाति का पूर्ण रूप से तथा ग्राम-रागों का नामोल्लेख मात्र से ही वर्णन किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय जातिगान ही अधिक प्रचलित था।

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 14, Issue 01, January-June, 2026

वैदिक परंपरा और सामवेद: राग की उत्पत्ति का प्राचीनतम आधार वैदिक परंपरा में मिलता है। सामवेद को भारतीय संगीत की आधारशिला माना जाता है। सामवेद में मंत्रों का स्वरबद्ध गायन मिलता है, जिसे 'सामगान' कहा गया है। सामगान में स्वर-चढ़ाव, स्वर-अवरोह तथा विशिष्ट गायन-पद्धतियाँ विद्यमान थीं। यद्यपि वैदिक काल में राग का स्पष्ट एवं स्वतंत्र स्वरूप विकसित नहीं हुआ था, तथापि यह माना जाता है कि सामगान की परम्परा ने स्वर-व्यवस्था तथा भावाभिव्यक्ति की उस आधारभूमि का निर्माण किया, जिस पर आगे चलकर राग-प्रणाली का विकास हुआ । संगीतबोध (डॉ. शरदचंद्र श्रीधर परांजपे) के अनुसार—"रामायण काल में शुद्ध सात जातियाँ प्रचलन में थीं और उनको क्लासिकल या उच्च श्रेणी के संगीत में बराबर स्थान प्राप्त था।"

जातियों के अतिरिक्त राग प्रणाली का संकेत रामायण में भी प्राप्त होता है। रामायण में सुंदरकांड का वर्णन करते समय निम्न पंक्ति दृष्टिगोचर होती है—

"रचिते कैशिकाचार्ये ररावत निषेविते।" (रामायण, बालमिकी (पं0 के0 चिन्नास्वामी शास्त्री), पृ0171)

"कैशिकाचार्य" शब्द की व्याख्या में टीकाकार गोविंदराज का कथन है— "कैशिके राग विशेषः आचार्य विद्याधरविशेषशरीरार्थः।"

अर्थात यहाँ टीकाकार ने कैशिक को राग विशेष कहा है। इससे स्पष्ट है कि रागों का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आ रहा है।

विकसित हुई। इस काल में संगीत मुख्यतः धार्मिक और आध्यात्मिक अनुष्ठानों से जुड़ा हुआ था।

राग की परिभाषा के मूल अर्थ को इसी प्रकार रखते हुए अन्य विद्वानों ने इसे भिन्न-भिन्न रूप से प्रस्तुत किया है। कल्लिनाथ ने कश्यपमत द्वारा प्रतिपादित राग-परिभाषा को स्वीकार किया है। उनके अनुसार, जो राग स्थायी, आरोही, अवरोही तथा संचारी—इन चारों वर्णों से सुशोभित हो तथा जिसमें वर्णचतुष्ट्य का सम्यक् दर्शन होता हो, वही राग कहलाता है। इस प्रकार का मत कालिदास द्वारा भी व्यक्त किया गया है **"चतुर्णामपि वर्णानां यो रागः शोभनो भवेत् स सर्वो दृश्यते येषु तेन रागा इति स्मृताः" ।** अर्थात् जिनके द्वारा तीनों लोगों में विद्यमान प्राणियों के हृदय का रंजन होता है, भरत इत्यादि मुनियों ने उसे राग कहा है। **"यैस्तु चेतांसि रज्यन्ते जगत्त्रितय वर्तिनाम् रागा इति कथ्यन्ते मुनिभिर्भरतादिभिः।"** रंजन के कारण ही राग की संज्ञा 'राग' है यही राग की व्युत्पत्ति है- "इत्येवं रागशब्दस्य व्युत्पत्तिरभिधीयते रंजनाज्जायते रागो व्युत्पत्तिः समुदाहृतः" (हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पाती एवं विकास -डा सुन्नदा पाठक, पृ.1)

रस सिद्धांत और स्वर-संयोजन: भारतीय कला-दर्शन में रस सिद्धांत को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में रस को कला की आत्मा माना है। संगीत में भी विभिन्न स्वरों और उनके संयोजनों से अलग-अलग रसों की अनुभूति होती है। इन्हीं रसात्मक अनुभवों के आधार पर ऐसे स्वर-संयोजन विकसित हुए जो विशेष भावों को जागृत करते थे। कालांतर में यही स्वर-संयोजन राग के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार राग का उद्देश्य केवल ध्वनि-सौंदर्य नहीं, बल्कि श्रोता के मन में विशिष्ट रस की उत्पत्ति करना है।

लोकसंगीत का योगदान: राग की उत्पत्ति एवं विकास में लोकसंगीत की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। लोकसंगीत जनसामान्य के जीवन, उनकी भावनाओं, रीति-रिवाजों, उत्सवों तथा सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा होता है। इसकी प्रमुख विशेषता इसकी सहजता, सरलता, स्वाभाविकता तथा भावप्रधानता है। लोकधुनें किसी शास्त्रीय नियमबद्धता के अंतर्गत निर्मित न होकर जनजीवन के अनुभवों और संवेदनाओं से स्वतः विकसित होती हैं। यही कारण है कि उनमें भावों की अभिव्यक्ति अत्यंत प्रभावशाली एवं सजीव रूप में देखने को मिलती है।

भारतीय संगीत के इतिहास का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि अनेक रागों की संरचना में लोकधुनों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव विद्यमान है। समय के साथ संगीताचार्यों ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित लोकधुनों का अवलोकन एवं अनुशीलन कर उन्हें परिष्कृत, व्यवस्थित और शास्त्रीय सिद्धांतों के अनुरूप रूपांतरित किया, जिसके परिणामस्वरूप अनेक रागों का विकास संभव हुआ। कई रागों में आज भी लोकसंगीत की स्वर-रचनाओं, चलनों तथा भावात्मक विशेषताओं की स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

लोकसंगीत और शास्त्रीय संगीत के मध्य यह पारस्परिक संबंध भारतीय संगीत की एक विशिष्ट विशेषता है। लोकधुनों से प्राप्त स्वाभाविकता एवं भावप्रवणता ने शास्त्रीय संगीत को जीवन्तता प्रदान की, जबकि शास्त्रीय संगीत ने लोकधुनों को एक सुव्यवस्थित एवं परिष्कृत स्वरूप प्रदान किया।

इस परस्पर आदान-प्रदान के कारण राग केवल शास्त्रीय संगीत की विषयवस्तु बनकर नहीं रह गया, बल्कि वह जनमानस की भावनाओं और सांस्कृतिक चेतना से भी निरंतर जुड़ा रहा।

कुछ विद्वानों का मत है कि राग की उत्पत्ति किसी एक स्रोत से नहीं हुई, अपितु यह एक दीर्घकालीन सांगीतिक विकास-प्रक्रिया का परिणाम है। उनके अनुसार वैदिक संगीत-परंपरा से प्राप्त स्वर-संगठन, भरतमुनि के रस-सिद्धांत से प्राप्त भावात्मक आधार तथा लोकसंगीत से प्राप्त सहज एवं जनोन्मुख धुनों—इन तीनों के समन्वय से राग-संकल्पना का क्रमिक विकास हुआ। अतः राग की उत्पत्ति को वैदिक परंपरा, रस-सिद्धांत एवं लोकसंगीत की संयुक्त देन के रूप में देखा जा सकता है।

वैदिक एवं पूर्व-शास्त्रीय काल

वैदिक काल में संगीत का स्वरूप मुख्यतः स्वर एवं छंद पर आधारित था। उस समय संगीत का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन न होकर धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनुष्ठानों की सम्पन्नता था। विशेषतः सामवेद के मंत्रों का गायन एक निश्चित स्वर-पद्धति के अनुसार किया जाता था, जिसे सामगान कहा जाता है। सामगान में स्वर-उतार-चढ़ाव, लयात्मकता तथा विशिष्ट गायन-शैलियों का प्रयोग मिलता है, जिससे संगीत के प्रारम्भिक स्वरूप का परिचय प्राप्त होता है। यद्यपि इस काल में राग की संकल्पना अपने स्वतंत्र एवं परिपक्व रूप में विकसित नहीं हुई थी, तथापि सामगान में प्रयुक्त स्वर-संगठन, विशिष्ट ध्वनि-विन्यास तथा भावाभिव्यक्ति के तत्त्व आगे चलकर राग-प्रणाली के विकास की आधारभूमि सिद्ध हुए। वैदिक ऋषियों ने स्वरों के माध्यम से मंत्रों के अर्थ एवं भावों को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया, जिससे संगीत में भावोत्पादकता का समावेश हुआ। यही भावात्मक एवं स्वरात्मक विशेषताएँ कालान्तर में विकसित होकर राग के स्वरूप में परिलक्षित हुईं। इस प्रकार वैदिक संगीत को भारतीय राग-परम्परा का प्रारम्भिक आधार माना जा सकता है, जिसने उत्तरवर्ती संगीत-परम्पराओं के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

नाट्यशास्त्र काल: भरतमुनि के *नाट्यशास्त्र* में ग्राम, मूर्छना और जाति प्रणाली का वर्णन मिलता है। जातियों को राग की पूर्व अवस्था माना जाता है, क्योंकि इनमें स्वर-विशेष, आरोह-अवरोह और भावात्मक संकेत स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इस काल में संगीत को नाट्य और रस से जोड़कर उसकी सौंदर्यात्मक भूमिका को सुदृढ़ किया गया। संगीत के क्षेत्र में राग शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से ही भावात्मक अर्थ में मिलता है, किंतु तकनीकी दृष्टि से राग की उत्पत्ति जाति प्रणाली से मानी जाती है। भरतमुनि का *नाट्यशास्त्र* संगीत का प्राचीनतम और प्रमाणिक ग्रंथ है, जिसमें गायन, वादन और नृत्य—तीनों विधाओं का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। भरत का संगीत सिद्धांत में आचार्य बृहस्पति ने लिखा है— "जातियाँ वास्तव में मूल राग हैं, जिनमें विकार होने से अनेक रागों का जन्म होता है।" जातियों से सात ग्राम-रागों का उद्भव हुआ तथा इन्हीं सात ग्राम-रागों से राग, उपराग, भाषाराग, विभाषा राग अथवा गीतियों के आधार पर अनेक रागों का निर्माण हुआ और यह राग-प्रथा निरंतर पनपती रही। आज यह राग-प्रथा हमारे शास्त्रीय संगीत का आधारभूत अंग है। भरत के समय में जाति गायन प्रथा प्रचलित थी । जिसका भरत ने विस्तृत वर्णन किया है लेकिन महार्षिभरत ने सात ग्राम राग भी गिनाएं है, उनके प्रयोग के अवसर भी निर्दिष्ट किए है ।

यथा%–

> ''मुखे तु मध्यमग्राम: षडज प्रतिमुखे भवेत ।
>
> गर्भे साधारितश्चैव अवमर्शे तु पंचम: ।।
>
> संहारे कैशके: प्रोक्त: पुर्वङ्ग तु षाड़व ।
>
> चित्राङस्याष्टादशांगस्य त्वन्ते कैशिक मध्यम: ।
>
> शुद्धा विनियोगोङयं ब्रहा्रणा समुदाहृत: ।(भरत का संगीत सिद्धान्त, आ0 के0 सी0डी0बृहस्पति–पृ. 199)

अर्थात नाटक की मुख संधि में मध्यम ग्राम नामक राग, गर्भ में साधारित अवमर्श में पंचम, संहार में 'कैशिक' पुर्वरंग में षाड़व और अष्टादशांग चित्रभिनय के अन्त में कैशिक मध्यम का प्रयोग निहित है । इन सातों (मध्यमग्राम, षड़जग्राम, साधारित, पंचम ,कैशिक, षाड़व और कैशिकमध्यम ग्राम रागों का विनियोग ब्रह्मा द्वारा किया गया है ।

बृहद्देशी काल: मतंग मुनि के बृहद्देशी ग्रंथ में पहली बार "राग" शब्द का स्पष्ट प्रयोग मिलता है। उन्होंने राग को ऐसा स्वर-संयोजन बताया, जो जनमानस को आनंद प्रदान करे। इस काल में देशी संगीत को विशेष महत्व मिला और राग को लोक और शास्त्र के समन्वय के रूप में देखा गया।

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 14, Issue 01, January-June, 2026

राग शब्द परिभाषित रूप से सर्वप्रथम मतंग की बृहद्देशी में प्रयुक्त हुआ है— "स्वरवर्णविशेषेण ध्वनिभेदेन वा पुनः। रञ्ज्यते येन सच्चित्तं स रागः संमतः सताम्॥" बृहदेशी भाग–2 मतंग (डा0 प्रेमलता शर्मा)–पृ076

अर्थात विशिष्ट स्वर-वर्ण (गान क्रिया) से अथवा ध्वनि भेद के द्वारा जो श्रोता के चित्त को रंजित करने में समर्थ हो, वही राग है।

राग शब्द मूलतः संस्कृत भाषा का है। इसकी उत्पत्ति 'रंज्' धातु से मानी गई है। संगीत कौमुदी के अनुसार—"राग शब्द की उत्पत्ति रंज् से हुई है, जिसका अर्थ है प्रसन्न करना या आनंद देना। अतः ध्वनि की वह विशिष्ट रचना, जो स्वर तथा वर्ण गान क्रिया से सुशोभित हो और जो श्रोताओं के मन को रंजित करे, वही राग कहलाती है।" संगीत कोमुदी भाग–2, विक्रमा दित्य निगम–पृ053

मतंगमुनि ने राग की जो परिभाषा दी है, लगभग सभी पश्चातवर्ती ग्रंथकारों ने उसे उसी रूप में स्वीकार किया है। राग के संदर्भ में हमें यह जानना आवश्यक है कि राग मात्र स्वरों का समूह नहीं अपितु एक ऐसी विशिष्ट मधुर स्वर-संकल्पना है, जिसे कलाकार राग के नियमों की परिधि में रहकर अपनी कल्पना, साधना एवं क्षमता के माध्यम से विकसित एवं प्रस्तुत करता है।

संगीत रत्नाकर काल: तेरहवीं शताब्दी में शारंगदेव द्वारा रचित संगीत रत्नाकर में राग का अत्यंत वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित विवेचन मिलता है।

शारंगदेव के अनुसार—

"योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः। रञ्जको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः॥"

अर्थात जो स्वर–विशेष मन को रंजित करे, वही राग है।

इस ग्रंथ में रागों के लक्षण, वर्गीकरण और राग-रागिणी परंपरा का विस्तृत वर्णन है। स्वर, ताल और नृत्य के समन्वय ने संगीत को एक समग्र कला के रूप में स्थापित किया। संगीतरत्नाकर के अंग्रेज़ी अनुवादक एवं टीकाकार डॉ. आर. के. शिरंगी ने "संगीतरत्नाकर" भाग–2 के पृष्ठ 102 पर लिखा है—"The word raga is used by Bharata in its general connotation of emotional colour or aesthetic enjoyment or pleasure (rakti) and in the compound grama-raga at certain places. The word raga is used by Matanga for the first time in a technical sense."

संगीत रत्नाकर के रागविवेकाध्याय" में रागों के दशविध वर्गीकरण का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। इस वर्गीकरण के अंतर्गत ग्राम राग, उपराग, राग, भाषा, विभाषा एवं अंतरभाषा का वर्णन मिलता है, साथ ही देशी परंपरा के रागों का भी उल्लेख किया गया है, जिन्हें आगे भाषांग, उपांग, क्रियांग तथा रागांग श्रेणियों में विभाजित किया गया है। *संगीत रत्नाकर* में इन सभी वर्गों को मिलाकर कुल 264 रागों का निरूपण किया गया है। यह अध्याय दो भागों में संयोजित है। इसके प्रथम भाग में शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरा तथा साधारणी—इन पाँच गीतियों के आधार पर ग्राम रागों के पाँच भेदों की व्याख्या की गई है। तत्पश्चात उपराग, राग, भाषा, विभाषा तथा अंतरभाषा रागों का क्रमशः विवरण प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के द्वितीय भाग में देशी रागों का विश्लेषण किया गया है, जिसमें प्राचीन काल से प्रचलित तथा शारंगदेव के समकालीन समय में रूढ़ रागों का पृथक्-पृथक् उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त, इस खंड में रागालाप एवं आक्षिप्तिका की संकल्पनाओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

मध्यकाल: मध्यकाल में रागों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। ध्रुपद शैली का विकास हुआ, जिसने राग की गंभीरता और अनुशासन को सुदृढ़ किया। रागों को समय, ऋतु और भाव से जोड़ा गया। दरबारी संरक्षण के कारण संगीत में शास्त्रीय परिष्कार आया। मध्यकाल तक राग की संकल्पना पूर्णतः विकसित हो चुकी थी। राग-रचना के सिद्धांतों को संगीतज्ञों ने भली-भाँति विश्लेषित एवं संशोधित कर स्थापित कर दिया था, जिनका निर्वहन सभी के लिए एक प्रकार से अनिवार्य था। मध्यकाल में अमीर खुसरो, सुल्तान हुसैन शर्की, नायक बख्शु तथा तानसेन जैसे महान संगीतज्ञों ने अनेकों रागों का निर्माण किया। नव-राग निर्माण के लिए निम्नलिखित विधियाँ प्रयोग में लाई जाती रही हैं—

- बिल्कुल नवीन स्वर-संयोजन से निर्मित राग, जो किसी पूर्ववर्ती राग से मेल न खाता हो।
- दो या अधिक रागों के मिश्रण से नए राग का स्वरूप प्रदान करना।
- वादी–संवादी स्वरों में परिवर्तन कर नए राग की संरचना करना।
- प्रचलित राग के चलन में आवश्यक परिवर्तन कर नए राग की रचना करना।

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 14, Issue 01, January-June, 2026

- मूर्च्छना द्वारा मूल स्वर परिवर्तन कर नए राग का निर्माण करना।
- लोक अथवा कर्नाटकी संगीत से स्वर-संयोजन को ग्रहण कर नए राग की संरचना करना।

आधुनिक काल: आधुनिक काल में ख्याल, ठुमरी, टप्पा जैसी शैलियों का विकास हुआ। घराना प्रणाली के माध्यम से राग प्रस्तुति में विविधता आई। नए रागों की रचना हुई और प्राचीन रागों का विस्तार किया गया। इस काल में राग परंपरा अधिक स्वतंत्र, भावप्रधान और प्रयोगशील बनी। राग की आधुनिक अवधारणा में उसमें सौंदर्यात्मक क्षमता का होना अनिवार्य माना गया है। मध्यम और पंचम दोनों स्वरों का एक साथ वर्जित होना स्वीकार्य नहीं है तथा एक ही स्वर के कोमल अथवा तीव्र रूप का क्रमशः प्रयोग भी नहीं किया जाता। वर्तमान समय में नए राग के निर्माण में इन बातों पर भी विशेष ध्यान रखा जा रहा है। उसके प्रस्तुतीकरण में गायन और वादन दोनों विधाओं में भाव पक्ष को अधिक महत्व दिया जाता है।

निष्कर्ष

यह प्रतिपादित किया जा सकता है कि राग की उत्पत्ति तथा उसका क्रमिक विकास भारतीय शास्त्रीय संगीत की एक दीर्घकालीन, गहन एवं भावनात्मक साधना-यात्रा का सशक्त प्रतिबिंब है। वैदिक कालीन स्वर-परंपरा, लोकसंगीत की सहज अभिव्यक्ति तथा रस-सिद्धांत की सूक्ष्म भावनात्मक चेतना के समन्वय से राग की संकल्पना क्रमशः विकसित होकर एक परिपक्व एवं सुसंस्कृत स्वरूप में प्रतिष्ठित हुई है। राग न केवल शास्त्रीय अनुशासन का प्रतीक है, अपितु उसमें अंतर्निहित सौंदर्यबोध, भावाभिव्यक्ति एवं कलात्मक स्वतंत्रता उसे एक जीवंत संकल्पना के रूप में स्थापित करती है। यह परंपरा अतीत की अमूल्य धरोहर को संरक्षित करते हुए वर्तमान की सृजनात्मक चेतना से जुड़ी हुई है तथा भविष्य में नवीन प्रयोगों एवं नवोन्मेष की असीम संभावनाओं का द्वार भी उद्घाटित करती है।

संदर्भ सूची

Bharata Muni. *Natyashastra,* Translation. Manomohan Ghosh, Asiatic Society, 1951.
Datta, V. N. *The Concept of Raga in Indian Music*. Munshiram Manoharlal, 1987.
Matanga Muni. *Brihdeshi* Ed. P. L. Sharma, Sangeet Natak Akademi, 1972.
Sharangadeva. *Sangeet Ratnakar*. Trans. R. K. Shringy and Prem Lata Sharma, Munshiram Manoharlal, 1978.
Thakur, Jaideva Singh. Indian Music: History and Structure. Abhinav Publications, 1976.